INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 5.71 (SJIF 2021)

साहित्य के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की अवधारणा

डॉ. बेठियार सिंह साहू
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजेन्द्र महाविद्यालय, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/10.2021-76985399/IRJHIS2110015

सारांश :

साहित्य समाज का दर्पण एवं दीपक है। यह स्वाभाविक सत्य है कि साहित्यक कृतियों की विषय–वस्तु एवं उनके सरोकार पक्षों में भिन्नता पाई जाती है। समाज के स्वरूप को लेकर अनेक विचार और परिकल्पनाओं का प्रस्तुतिकरण दीर्घकाल से प्रचलित है। प्रत्येक लेखक की अपनी वैचारिक पक्षधरता है। तदनुरूप वह अपनी कृतियों में समाज का स्वरूप प्रस्तुत करता है। साथ ही वह सन्दर्भ विशेष में अपनी परिवर्तन–कामना या यथास्थितिवाद को साहित्यिक साँचे में ढालकर प्रस्तुत करता है। कुल मिलाकर वह समाज के जिस स्वरूप को प्रस्तुत करता है और भावी समाज की जो रूपरेखा प्रस्तुत करता है वह उसके साहित्य का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य होता है।

बीज शब्द : *साहित्य, समाज, शास्त्र, परिप्रेक्ष्य, अवधारणा, विचार, सरोकार आदि।*

प्रस्तावना :

प्रत्येक अवधारणा व व्यवस्था का अपना एक विशिष्ट शास्त्र होता है। यह शास्त्र शब्द उसकी बनावट बुनावट और बाह्य पक्षों से सरोकार पर आधारित है। जिस तरह साहित्य क्षेत्र में शास्त्र से आशय उसके व्याकरणिक पहलुओं एवं वस्तु विधान के उचित संयोजन से है, उसी तरह समाज का भी अपना व्याकरण और व्यवस्थागत वस्तुविन्यास होता है। इसे दूसरे शब्दों में विचार–व्यवहारगत प्रतिमान या मापदण्ड कहा जा सकता है। साहित्य का सृजन निर्विवाद रूप से समाज की पृष्ठभूमि पर आधारित है। किसी भी कृति का साहित्यिक औचित्य इसी बात पर निर्भर करता है कि वह अपने सामाजिक सरोकार के उद्देश्य में कितना कारगर साबित होता है। वास्तव में, साहित्य सामूहिक कल्याण के भाव से युक्त कलात्मक लेखकीय उपक्रम है। समाज, मनुष्यों के बीच पाए जाने वाला सम्बन्ध, अंतःक्रिया, परस्पर एक–दूसरे पर प्रभाव और अन्योन्याश्रितता की एक अत्यंत व्यापक व्यवस्था है। समाजशास्त्र, समाज में अंतर्निहित, सम्पूर्ण मानवीय क्रियाकलाप, जीवन को संचालित और नियंत्रित करने वाले समस्त औपचारिक–अनौपचारिक साधनों का सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध वैज्ञानिक अध्ययन है। यह भी उल्लेखनीय है कि 'समाजशास्त्र' समाज की व्यवस्था का समग्रता में अध्ययन करने वाले एक एक पृथक् विषय के रूप में अस्तित्व में आया है। समाज का समाजशास्त्र भी उन विषय वस्तुओं और अध्ययन क्षेत्रों का स्पर्श करता हुआ चलता है जो वास्तविक समाज का समाजशास्त्र है।

उद्देश्य :

उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, कविता आदि साहित्य की किसी भी विधा पर केन्द्रित रचनाओं के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

से संबंधित अध्ययन का शोध–कार्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है। विभिन्न रचनाओं के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य पर आधारित शोध–कार्य के प्रचलन में अभिवृद्धि हुई है। इन्हीं बातों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध–पत्र में साहित्य के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की अवधारणा को सरल ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शोध – प्रविधि :

प्रस्तुत शोध–पत्र के संयोजन में विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया गया है। आलोच्य विषय पर अपनी परिकल्पनाओं एवं स्थापनाओं का महत्वपूर्ण विचारकों की उक्तियों के साथ विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिक रीति से धारणाओं के निर्धारण एवं निष्कर्ष के निष्पादन का प्रयास किया गया है।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य :

साहित्य के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की अवधारणा को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम 'समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' को समझ लिया जाए। इस सन्दर्भ में डॉ. लवानिया एवं डॉ. जैन का कथन है ''किसी शास्त्र के सन्दर्भ में परिप्रेक्ष्य का अर्थ है कि उसके अध्ययन में विश्लेषण इकाई को एक विशेष दृष्टि से देखा जाए। किसी भी प्रघटना या वस्तुस्थिति के आसीत्व एवं गतिविधि के अनेक आयाम हो सकते हैं। अध्ययन करने वाला इनमें से कुछ आयामों पर विशेष ध्यान देता है और अन्य को अनदेखा कर देता है।''[1] स्पष्ट है कि परिप्रेक्ष्य का अभिप्राय दृष्टिकोण की विशिष्टता है। इस सन्दर्भ में अध्ययन क्षेत्र से संबंधित विषय क्षेत्रों, यथा–दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का विशेष महत्व है। इन विषयों का अपना अलग पूर्व प्रचलित दृष्टिकोण है जिसके आधार पर किसी भी घटना, परिस्थिति के अध्ययन की दिशा सुनिश्चित होती है।

'''समाजशास्त्र' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'SOCIOLOGY' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसे दो भागों 'SOCIO' और 'LOGY' में विभक्त किया जाता है। प्रथम शब्द 'SOCIO' लैटिन भाषा के शब्द 'SOCIAS' से बना है और दूसरा शब्द 'LOGY' ग्रीक भाषा के शब्द 'LOGOS' से बना है जिनका अर्थ क्रमशः 'समाज' तथा 'विज्ञान' या 'अध्ययन' है। अतः समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ 'समाज का विज्ञान' या 'समाज का अध्ययन' है।''[2] समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है अर्थात् एक ऐसा विषय जिसमें समाज के विभिन्न संघटक अवयवों का अध्ययन किया जाता है। मनुष्यों के मध्य पारस्परिक अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप निर्मित संबंधों के संजाल से समाज का स्वरूप निर्मित होता है और इसमें अनेक मूर्त–अमूर्त घटक अंतर्निहित होते हैं। यथा धर्म, जाति, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, आधुनिकता, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, मद्यपान, भिक्षावृत्ति, नारी–समस्या, शिक्षा, रोजगार आदि सहित सामाजिक उत्थान एवं विघटन के विभिन्न पहलुओं का इसमें अध्ययन किया जाता है। वास्तव में एक ही विषयवस्तु या घटनाक्रम का अध्ययन अलग–अलग विषयों द्वारा अपने–अपने दृष्टिकोणों या अध्ययन पद्धतियों से किया जाता है किन्तु उनके अध्ययन का दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न होना स्वाभाविक है। विभिन्न विषयों में अध्ययन वस्तु के समान होने पर भी परिप्रेक्ष्य की भिन्नता उन विषयों के अध्ययन की सीमाओं को स्पष्ट करती है। डॉ. के. जैन के शब्दों में ''प्रत्येक शास्त्र अपनी विषय–वस्तु के अध्ययन, विवेचन, वर्णन एवं विश्लेषण के लिए वैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुशीलन हेतु कतिपय सिद्धान्तों की रचना करता है। ये सिद्धान्त संबंधित विषय की विकासयात्रा के उल्लेखनीय सीमा चिन्ह बन जाते हैं। इनकी सहायता से एक अध्ययनकर्त्ता विभिन्न समस्याओं को उनके समग्र परिप्रेक्ष्य में समझ पाता है।''[3] अनेक विषय हैं जो मानव समाज के अध्ययन में क्रियाशील हैं। जैसे राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि। सभी विषय सामाजिक जीवन से संबंधित विभिन्न तथ्यों को अपने–अपने परिप्रेक्ष्य से समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार सामाजिक घटनाओं व विषय–वस्तुओं को अनेक दृष्टिकोणों से समझा व विश्लेषित किया जा सकता है।

इन प्रघटनाओं को राजनीतिशास्त्र राजनैतिक दृष्टिकोण से देखेगा और उनके कारण व परिणामों का विश्लेषण करेगा, अर्थशास्त्र इनसे देश पर पड़ने वाले आर्थिक भार की विवेचना करेगा और इतिहास इन्हें ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखेगा। इसी तरह समाजशास्त्र का अपना नज़रिया होगा। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अंतर्गत् दो या दो से अधिक व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों का, चाहे वे सहयोग हों या संघर्ष के एवं उनसे उत्पन्न प्रभावों व उनके उत्पन्न होने की परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं। इसी दृष्टिकोंण का दूसरा पक्ष यह है कि कोई भी वस्तु या प्रघटना सामाजिक संबंधों, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक मूल्यों, सामाजिक प्रस्थिति, सामाजिक प्रक्रिया एवं सामाजिक नियंत्रण को किस रूप में प्रभावित करती है। अतः परिप्रेक्ष्य का अभिप्राय है, किसी भी घटना, परिस्थिति, व्यक्ति या वस्तु के सन्दर्भ में एक विशेष दृष्टिकोण। प्रत्येक विषय की अपनी–अपनी अध्ययन पद्धति व विश्लेषण का पक्ष है। यही उसका विशिष्ट परिप्रेक्ष्य कहा जा सकता है।

साहित्य का समाजशास्त्र :

साहित्य का अर्थ 'सहहितैषिता' या सामूहिक कल्याण के भाव से संपृक्त गद्य–पद्य रचनाएँ हैं। साहित्य के सन्दर्भ में यह तथ्य ध्यातव्य है कि वह किसी समाज, काल एवं परिवेश की यथावत् अभिव्यक्ति या प्रस्तुतिमात्र नहीं है बल्कि उनमें आवश्यकतानुरूप परिवर्तन लाने की आकांक्षा का यथोचित विधान और समाज का मार्गदर्शन भी है। यदि किसी साहित्य रचना का स्वरूप केवल यथार्थवादी हो अर्थात् किसी विषय वस्तु का वह ठीक वैसा ही वर्णन करे जैसा सन्दर्भित व्यवस्था में चल रहा है, उसमें स्पष्ट रूप से कहीं परिवर्तन या संघर्ष का आह्वान न किया गया हो, न ही उसके लिए काई मार्ग सुझाया गया हो तब भी साहित्य अपने उद्देश्य में सफल होता है क्योंकि किसी भी अच्छे, बुरे पक्ष का उल्लेख, प्रकाशन व व्यापक जनजीवन तक सम्प्रेषण उसके प्रति जनजागृति लाने का ही उद्यम है, लोगों की सुषुप्त चेतना को झंकृत करना है। वास्तव में, साहित्य सर्जना की पृष्ठभूमि ही वे परिस्थितियॉ हैं जिनमें किसी न किसी तरह के परिवर्तन की आवश्यकता होती है। या तो उनके स्वरूप में कुछ परिमार्जन की अपेक्षा होगी या फिर उनमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता।

साहित्य–रचना में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक आदि अनेक आयाम होते हैं। किसी भी रचना में इन तत्वों का यथास्थान संगुंफन होता है, ठीक उसी तरह जिस तरह किसी भी सामाजिक घटना, परिस्थिति के अनेक आयाम होते हैं। साहित्य में चूँकि रचना के स्तर पर ये परिस्थितियॉ स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती हैं और शोध तथा समीक्षा के स्तर पर रचनाओं का भी अध्ययन किया जाता है। साहित्य जब विषय के किसी विशिष्ट पक्ष पर केन्द्रित होकर उसका अध्ययन करता है तो वह उसका विशिष्ट परिप्रेक्ष्य कहलाता है। अतः साहित्य का राजनैतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, अर्थशास्त्रीय या समाजशास्त्रीय आदि कोई भी दृष्टिकोण हो सकता है। जब साहित्य किसी विषय–वस्तु का राजनीति शास्त्र की विशेषताओं को ध्यान में रखकर अध्ययन करता है, तो वह उस विषय का राजनैतिक अध्ययन कहलाता है, इतिहास की दृष्टि से साहित्य जब अध्ययन या वर्णन करता है तो वह उसका ऐतिहासिक अध्ययन कहलाता है। इसी तरह जब समाजशास्त्र की विषय–वस्तुओं व अध्ययन क्षेत्र को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप विशेष रूप से जब साहित्य अध्ययन करता है तो वह 'साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन' कहलाता है किन्तु साहित्य के समाजशास्त्र के सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि साहित्य केवल वस्तुस्थितियों को सिर्फ दिखाता ही नहीं बल्कि उनके सामाजिक परिप्रेक्ष्यों की तलाश भी करता है। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय का कथन है ''साहित्य का समाजशास्त्र रचना की अंतर्वस्तु का विश्लेषण करते हुए उसके सामाजिक सन्दर्भों को महत्व देता है।''[4] मैनेजर पाण्डेय का यह कथन साहित्य के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला है। कम शब्दों के बावजूद यह वाक्य साहित्य के समाजशास्त्र का निहितार्थ अभिव्यक्त करने में पूर्ण रूपेण सक्षम प्रतीत होता है। किसी विषय–वस्तु का अध्ययन साहित्य किस ढंग से करता है और समाज का कौन सा चेहरा लेकर प्रस्तुत होता है, यही साहित्य का

समाजशास्त्र है।

उल्लेखनीय है कि साहित्येतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो यह पता चलता है कि साहित्य रचनाओं का एक व्यापक हिस्सा कलात्मकता, चमत्कारप्रियता एवं बौद्धिक विलास के गुणों से तो कूट–कूट कर भरा है किन्तु उसके सामाजिक संदर्भों एवं औचित्य का पक्ष दबा हुआ मिलता है। इस सन्दर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन उल्लेखनीय है– ''साहित्यिक रचनाएँ मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़ने वाले विभिन्न सामाजिक जीवन के प्रतिबंधों की ऊपज होती हैं। जो कला रूप सामाजिक चेतना से कला और सामाजिक दायित्वों से कलाकार का संबंध विच्छेद करता है, वह मनुष्य की मानवीय गरिमा के विरूद्ध कार्य करता है। मनुष्य की संचेतना उसके सामाजिक अस्तित्व से ही निर्धारित होती है।''[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि के इस कथन से साहित्य के समाजशास्त्रीय पहलू पर प्रकाश पड़ता है। साहित्य का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की विषय–वस्तुओं का साहित्य क्षेत्र में सामाजिक सरोकारजनित विश्लेषण है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है ''साहित्य का समाजशास्त्र अपने जनक समाजशास्त्र के बुनियादी अनुशासन के प्रयोजन और पद्धति से एकदम स्वतंत्र नहीं हो सकता। समाजशास्त्र सामाजिक संरचनाओं, संस्थाओं और व्यक्ति तथा समाज के अध्ययन का एक अनुशासन है।''[6] मैनेजर पाण्डेय का यह कथन स्पष्ट करता है कि साहित्य का वह पहलू जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच की सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत् समग्र व्यवस्था में निहित उचित–अनुचित पहलुओं पर विचार किया जाता है और लोकहित का ध्यान रखते हुए उसके मार्गों की तलाश और पड़ताल की जाती है।

साहित्यकार समाज की वस्तु को साहित्य का विषय बनाकर समाज को पुनर्रचित करने की प्रक्रिया में योगदान करता है। समाज और साहित्य का यह संबंध युगों–युगों से चला आ रहा है। ''काल विशेष में साहित्य में उपस्थित मानव एक ओर अपने समाज का प्रतिबिम्ब होता है तो दूसरी ओर आगामी समाज का प्रेरणा स्त्रोत अथवा एक प्रतिदर्श। इन्हीं कारणों से समाजशास्त्र अध्येता के लिए साहित्य का अध्ययन अत्यंत मूल्यवान होता है।''[7] साहित्य का आधार वह सामाजिक यथार्थ है, जो रचयिता द्वारा अनुभूत होता है। उस यथार्थ के कोण अनेक हैं। रचयिता का निजी संसार, उसकी अर्थ–व्यवस्था, उसका राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेश आदि तो उस रचना के आधार हैं ही, परन्तु रचना की प्रकाशन–वितरण व्यवस्था पाठकों का अंतर्सम्बन्ध, आलोचकों की प्रतिक्रिया ये सारे तत्व भी रचना की निर्मिति में अपना प्रभाव डालते हैं। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, साहित्य को एक संस्था के रूप में स्वीकार करके उसके घटक तत्वों का तथ्यात्मक रूप एवं उनके परस्पर अंतर्सम्बन्ध का अध्ययन करता है।

निष्कर्ष :

साहित्य अपने समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समग्र समाज और इसकी प्राथमिक इकाई मनुष्यों के मध्य व्याप्त परस्पर संबंधों की, आपसी सरोकारों की एवं व्यवहार–प्रतिमानों को निर्धारित करने वाले सम्पूर्ण तत्वों की व्यवस्था को अपने अध्ययन क्षेत्र में समाहित करता है। किसी भी रचना में प्रस्तुत समाज कैसा है, जैसा है वैसा क्यों है, उसमें परिवर्तन की क्या आवश्यकताएँ हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर साहित्यिक कला के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया गया विचार–विमर्श उस साहित्य का समाजशास्त्र है। जैसे– वर्तमान दौर की प्रमुख अस्मितावि‍मर्शमूलक साहित्यिक सरणियों में दलित, स्त्री, किसान, मजदूर, वृद्ध, दिव्यांग, किन्नर इत्यादि की स्थितियों का किस प्रकार उल्लेख किया जाता है और उनकी समस्याओं के लिए जिम्मेवार पक्षों की किस तरह पड़ताल की जाती है, साथ ही उन सस्याओं के निवारण हेतु कौन से मार्ग सुझाए जाते हैं। इन सभी तत्वों का समन्वित स्वरूप साहित्य की समाजशास्त्रीयता निर्धारित करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. लवानिया एवं डॉ. जैन : सैद्धांतिक समाजशास्त्र, पृ. 54

2. डॉ. धर्मवीर महाजन एवं डॉ. कमलेश महाजन : सामाजिक विचारों का इतिहास, पृ. 2

3. डॉ. शशी के. जैन : समाजशास्त्रीय सिद्धांत, पृ. 1

4. मैनेजर पाण्डेय : शब्द और कर्म, पृ. 116

5. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 59

6. मैनेजर पाण्डेय : शब्द और कर्म, पृ. 113

7. वही, पृ. 113